RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2024

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम् ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2024

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

भारतीय ज्ञान परंपरा में वेदांग ज्योतिष की वैज्ञानिक विवेचना

डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय ज्ञान परम्परा का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है, जिसमें ब्रह्माण्ड, काल, प्रकृति और मानव जीवन का गहरा तालमेल दिखाई देता है। इस परम्परा में ज्योतिष का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है, क्योंकि इसके माध्यम से ऋषियों ने समय की गणना, ग्रहण-नक्षत्र संबंधी ज्ञान तथा सूर्य-चन्द्र की गतियों के आधार पर जीवन के विभिन्न अनुष्ठानों को नियोजित किया। यही कारण है कि ज्योतिष को वेदांग स्वीकार किया गया, अर्थात् यह वेद का अभिन्न अंग माना गया।

वेदांग-ज्योतिष को केवल धार्मिक मार्गदर्शक ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता, बल्कि इसे भारतीय वैज्ञानिक दृष्टि का मूल माना जाना चाहिए। इसमें काल-विभाजन, पंचांग निर्माण, नक्षत्रों का वर्गीकरण, ऋतुओं की स्थिति तथा आकाशीय पिण्डों की गणनाएँ मिलती हैं। इस प्रकार ज्योतिष का उद्देश्य शुभ-अशुभ निर्णय या फलादेश नहीं, बल्कि समय-संयोजन और खगोलिक गणना है। वेदांग होने के कारण यह पवित्र और श्रद्धेय माना जाता था और इसे याद रखना तथा पढ़ना पुण्य का कार्य समझा जाता था। यही कारण है कि युगों की लंबी अवधि में भी यह ज्ञान लुप्त नहीं हुआ।

वेदांग-ज्योतिष ग्रंथ को सामान्य अर्थों में पुस्तक कहना अनुचित है, क्योंकि इसमें केवल 44 श्लोक मिलते हैं। वस्तुतः यह एक पुस्तिका है, जो अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी आश्चर्यजनक रूप से वैज्ञानिक दृष्टि रखती है। इसमें ब्रह्माण्ड में सूर्य और चन्द्र की गतियों के आधार पर दिन, मास, ऋतु और संवत्सर की गणना का स्पष्ट विवरण प्राप्त होता है। ऋषियों ने इन सिद्धांतों के आधार पर एक व्यवस्थित पंचांग व्यवस्था विकसित की, जिसका उपयोग यज्ञ, संस्कार, कृषि और सामाजिक जीवन में होता रहा।

वेदांग-ज्योतिष के दो पाठ मिलते हैं—ऋग्वेद-ज्योतिष और यजुर्वेद-ज्योतिष। दोनों का विषय एक ही है, परन्तु यजुर्वेद-ज्योतिष में 44 श्लोक हैं और ऋग्वेद-ज्योतिष में केवल 36। सामान्यतः श्लोकों की सामग्री एक ही है, पर क्रम भिन्न है और कई स्थानों पर शब्द-भेद होने पर भी अर्थ समान है। यह सम्भव है कि ये दोनों पाठ किसी बड़े ग्रंथ से संकलित हों, जिसका अधिकांश भाग समय के साथ नष्ट हो गया। आधुनिक विद्वानों का मत भी इसी दिशा में है। परन्तु डॉ. शामशास्त्री का मत भिन्न है, जिसके अनुसार यजुर्वेद-ज्योतिष में बाद के समय में टीका के रूप में कुछ श्लोक जोड़ दिए गए, जिससे उनकी संख्या अधिक प्रतीत होती है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि कुछ संस्करणों में श्लोकों की संख्या 43 दिखाई पड़ती है, परंतु डॉ. शामशास्त्री द्वारा सम्पादित मानक संस्करण में 44 श्लोक स्वीकार किए गए हैं, जिन्हें बहुधा प्रमाणिक माना

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

जाता है।

टीकाओं (भाष्यों) का इतिहास

वेदांग-ज्योतिष अत्यन्त संक्षिप्त शैली में रचित है। अनेक स्थानों पर शब्दों का लोप हुआ है और वाक्यों की संरचना सूत्रवत् है। वस्तुतः इसके श्लोक सूत्र रूप में लिखे गये हैं, जिनका उद्देश्य नियमों को संकेतमात्र स्वरूप में देना है, न कि उन्हें विस्तृत रूप में नवशिक्षार्थी को समझाना। यह वही स्थिति है जैसे गणित में सूत्रों की सूची दी जाती है, जिन्हें केवल वह व्यक्ति समझ सकता है जिसने पूर्व में विषय को गंभीरता से आत्मसात् किया हो। यही कारण है कि इन सूत्रों का सीधा भाष्य करना कठिन हो गया और टीकाकारों को भाषा, अर्थ और संदर्भ स्पष्ट करने में बड़ी कठिनाई आयी।

वेदांग-ज्योतिष पर उपलब्ध प्रारम्भिक भाष्यों में सोमाकर का टीका उल्लेखनीय है, परंतु यह टीका अत्यन्त कमजोर मानी गयी क्योंकि भाष्यकार स्वयं अनेक श्लोकों का आशय स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाया था। इसके बाद आधुनिक युग में यूरोपीय विद्वानों ने इस ग्रंथ की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया। सबसे पहले वेबर ने वेदांग-ज्योतिष का संस्करण उपलब्ध कराया। उसके पश्चात् सर विलियम जोन्स, व्हिटनी, कोलब्रुक, बेंटली, डेविस, मैक्सम्यूलर, थीबों और अन्य विद्वानों ने श्लोकों को समझने का प्रयास किया, किन्तु सारे प्रयासों के बावजूद कई श्लोक ऐसे रहे जिनका संतोषजनक अर्थ नहीं निकल पाया। थीबों ने इस विषय पर विस्तृत टिप्पणियाँ सन् 1879 में प्रकाशित कीं, जिनमें कई नए दृष्टिकोण प्रस्तुत हुए।

इसके बाद भारतीय विद्वानों ने भी वेदांग-ज्योतिष की समस्याओं पर गंभीर अध्ययन प्रारम्भ किया। कृष्णशास्त्री गोडबोले, जनार्दन बालाजी मोडक और शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने उन श्लोकों की व्याख्या करने का प्रयास किया जिनका अर्थ पूर्व टीकाकारों से नहीं लग पाया था, हालाँकि वे भी पूर्ण सफलता प्राप्त न कर सके। सन् 1906 में लाला छोटे लाल ने, 'वार्हस्पत्य' उपनाम से, हिंदुस्तान रिव्यू में कई लेख लिखे जिनमें उन्होंने श्लोकों के नये और चातुर्यपूर्ण अर्थ प्रस्तुत किए, परन्तु पारम्परिक विद्वानों को वह व्याख्या संतोषजनक नहीं लगी।

सन् 1908 में महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने 'पंडित' नामक पत्रिका में अनेक लेख प्रकाशित किए, जिनमें उन्होंने छोटे लाल की मतव्याख्याओं का खंडन किया और अपने मतानुसार पाठ संशोधन तथा अर्थ-व्याख्या प्रस्तुत की। इस प्रयास ने वेदांग-ज्योतिष के अनेक श्लोकों को नया दृष्टिकोण दिया।

सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य डॉ. आर. शामशास्त्री द्वारा हुआ। उन्होंने 1936 में मंसूर सरकार के मंत्रालय से वेदांग-ज्योतिष का एक नया संस्करण प्रकाशित कराया, जिसमें उन्होंने श्लोकों का अर्थ सूर्यप्रज्ञप्ति तथा अन्य जैन ज्योतिष ग्रंथों और ज्योतिष-करंड में दिये गए नियमों की सहायता से समझाया। जैन ग्रंथों में वेदांग-ज्योतिष के नियम अपनाए गए थे और उनकी विस्तृत व्याख्या भी दी गयी थी। इस सहायता से वेदांग-ज्योतिष की जटिल सूक्तियाँ स्पष्ट होने लगीं।

डॉ. शामशास्त्री स्वयं स्वीकार करते हैं कि वेदांग-ज्योतिष के अनेक उलझे हुए सूत्र उन जैन ग्रंथों में सरल रूप में उपलब्ध थे। यहाँ तक कि ग्यारहवें श्लोक की व्याख्या, जिसने विद्वानों को लंबे समय तक उलझाए रखा, सूर्यप्रज्ञप्ति में प्राकृत भाषा में पूरी तरह अनूदित मिलती है। इस प्रकार वह सूत्र जो सदियों तक गूढ़ बना रहा, इस तुलना के आधार पर स्पष्टता प्राप्त कर सका।

इन सभी चरणों से गुजरकर अब वेदांग-ज्योतिष के अधिकांश श्लोकों का अर्थ काफी संतोषजनक रूप से स्थापित हो चुका है। यह यात्रा यह दर्शाती है कि भारतीय विद्या परम्परा में सूत्र-रूप ज्ञान की व्याख्या क्रमशः विकसित होती रही और आज वह वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से स्पष्ट स्वरूप में हमारे सामने उपलब्ध है।

वेदांग-ज्योतिष की विषय-सूची

वेदांग-ज्योतिष में पंचांग निर्माण की प्रारम्भिक मूल संरचना उपलब्ध होती है। यह ध्यान देने योग्य है कि पंचांग का निर्माण खगोलिक तथा काल-विज्ञान का आधार लेकर किया जाता है, और यही विशेषता इसे वैज्ञानिक बनाती है। प्राचीन समय में यज्ञ, दान, संस्कार, उत्सव, कृषि और सामाजिक व्यवस्था के सभी कार्यों के लिए उचित समय का निर्धारण आवश्यक होता था। अतः वेदांग-ज्योतिष के श्लोक व्यवहार में प्रयुक्त होते थे। बाद के काल में जब सूर्य-सिद्धान्त और अन्य ज्योतिषीय सिद्धान्तों के आधार पर अधिक सूक्ष्म पंचांग बनना प्रारम्भ हुआ, तब भी वेदांग-ज्योतिष के श्लोक पवित्र परम्परा समझ कर स्मरण किए जाते रहे, इसीलिए ये आज तक सुरक्षित रूप में उपलब्ध हैं।

यजुर्वेद-ज्योतिष के कुल 44 श्लोकों में से प्रारम्भ के चार और अंतिम दो श्लोक गणित विषय से सम्बद्ध नहीं हैं। पहला श्लोक प्रजापति की वन्दना का है, दूसरे में काल की महिमा का वर्णन है, तीसरा श्लोक वेदांग-ज्योतिष की आवश्यकता और उद्देश्य स्पष्ट करता है तथा चौथे में यह कथन है कि वेदांगों में ज्योतिष का स्थान सर्वोच्च है। यह स्थान महानता का है, जैसे मोरों में शिखा और नागों में मणि का। इसी उपमा से यह स्पष्ट किया गया कि वेदांग शास्त्रों का मस्तक यदि कहीं है तो वह ज्योतिष ही है।

अंतिम श्लोक में ज्योतिर्विद् के लिए मंगलकामना की गयी है। कहा गया है कि जो पंडित सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की गतियों को समझ कर चलता है वह इस लोक में सुखमय जीवन व्यतीत करेगा और मृत्यु के बाद सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र लोक में प्रतिष्ठित होगा। यहां आकाशीय गणित और आध्यात्मिक फल का अद्‌भुत संतुलन दिखाई देता है।

श्लोक संख्या 42 ज्योतिष के विषय में नहीं बल्कि गणित में अत्यन्त महत्वपूर्ण त्रैराशिक नियम से सम्बद्ध है। यह यह सूचित करता है कि वेदांग-ज्योतिष में गणितीय चेतना भी समाहित थी। इस प्रकार वास्तविक ज्योतिष विषयक 37 श्लोक अवशेष रहते हैं।

वेदांग-ज्योतिष में समय की तीन मूल इकाइयों पर विचार किया जाता है—दिन-रात्रि, चांद्रमास और वर्ष। प्राकृतिक अनुभव से इनके सम्बन्धों की खोज की गयी। पृथ्वी के स्वयं घूमने से दिन और रात्रि बनती है, चन्द्रमा की पृथ्वी के चारों ओर परिक्रमा से एक चांद्रमास पूर्ण होता है, और सूर्य का प्रत्यक्ष भ्रमण वर्ष निर्धारण करता है। प्राचीन काल का विज्ञान सहज अवलोकन से निर्मित हुआ था। इसीलिए वर्ष को संदर्भित करते समय एक बरसात से दूसरी बरसात तक की अवधि को आधार बनाया जाता था। इन तीन इकाइयों को व्यवस्थित करने के लिए यह जानना अत्यावश्यक था कि एक चांद्रमास में कितने दिन होते हैं, एक वर्ष में कितने चांद्रमास और दिन सम्मिलित होते हैं, तथा चन्द्रमा नक्षत्रों के संबंध में प्रतिदिन किस स्थान पर रहता है। नक्षत्रों की संख्या सत्ताइस निर्धारित की गयी, ताकि चन्द्र मार्ग को बराबर भागों में विभाजित किया जा सके और प्रत्येक भाग का नाम निश्चित हो।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि आधुनिक मापनानुसार एक चांद्रमास लगभग 29.530588 दिनों के बराबर होता है और वर्ष 365.242 दिनों का। किन्तु प्राचीन काल में दशमलव पद्धति उपलब्ध नहीं थी और भिन्नों का प्रयोग भी बहुत सीमित था। इस कठिनाई का समाधान युग पद्धति द्वारा किया गया। सिद्धांत यह था कि कई वर्षों को लेकर एक इकाई मान ली जाए, जिसे 'युग' कहा जाता था, और फिर उस युग में चांद्रमासों तथा दिनों की संख्या पूर्ण संख्याओं में व्यक्त कर दी जाए। इस प्रकार जटिल भिन्नों की आवश्यकता समाप्त हो जाती थी।

वास्तव में वेदांग-ज्योतिष की युग-प्रणाली अद्भुत वैज्ञानिक सूझबूझ का उदाहरण है। जितने अधिक वर्षों का युग चुना जाएगा उतनी ही सूक्ष्मता के साथ मास की गणना संभव होगी। यदि किसी छोटा-सा युग, जैसे दो चांद्रमास का, लिया जाए तो 2 चांद्रमास = 59 दिन माने जा सकते हैं, जिसका अर्थ यह हुआ कि एक चांद्रमास 29.5 दिन का माना जाएगा, परन्तु वास्तविकता इससे थोड़ी अधिक है। इसी प्रकार यदि एक ही दिन बढ़ा दिया जाए तो 30 का आंकड़ा मिल जाता है, पर वह वास्तविकता से बहुत ऊपर है। इससे यह सिद्ध होता है कि एक सूक्ष्म और वास्तविक गणना लंबे युगों को आधार मानकर ही संभव है।

पंचवर्षीय युग

वेदांग-ज्योतिष में समय मापन का आधार 'युग' पद्धति है, जिसमें वर्षों की एक निश्चित अवधि लेकर चन्द्रमासों और दिनों की गणना की जाती है। इस ग्रंथ ने पाँच वर्ष के युग का चयन किया है। इस पाँच वर्ष की अवधि में कुल 1830 दिन माने गए और इसी अवधि में 62 चन्द्रमास पूर्ण होते माने गए। इस प्रकार यदि 1830 को 62 से विभाजित किया जाए तो निष्कर्ष मिलता है कि एक चन्द्रमास की अवधि 29.516 दिन होती है। यह संख्या वास्तविक मान 29.53 दिन के निकट तो है, किन्तु पूरी तरह सटीक नहीं है।

यदि इस गणना में एक दिन और संख्या में जोड़ दिया जाता, अर्थात् युग 1831 दिनों का माना जाता, तो चन्द्रमास की गणना थोड़ी और शुद्ध हो जाती। किन्तु इस परिवर्तन से वर्ष का मान बिगड़ जाता, क्योंकि पाँच वर्ष में 1831 दिनों मानने पर प्रति वर्ष 366.2 दिन निकलते, जबकि वास्तविकता 365.24 दिनों के आसपास है। अत: युग में एक अतिरिक्त दिन जोड़ना सुधार प्रतीत होते हुए भी वर्ष-मान को वास्तविकता से दूर कर देता। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि वेदांग-ज्योतिष को सीमित गणितीय साधनों के बीच संतुलन साधना पड़ा।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उस काल के दृष्टिकोण से 29.516 दिन का अनुमान अत्यन्त सराहनीय था। परंतु इस मान को लगातार वर्षों तक उपयोग में लाया जाता तो अंतर धीरे-धीरे बढ़ता जाता। उदाहरण के लिए यदि कोई प्राचीन गणक 20 वर्षों तक इसी मान को प्रयुक्त करता, तो 20 वर्षों में कुल लगभग ह्ळूढ़े तीन दिन का अंतर एकत्रित हो जाता। यह अंतर इतना बढ़ जाता कि जब उसकी गणना के अनुसार अमावस्या होती, तब आकाश में चन्द्रमा पूर्णत: लुप्त होने के बजाय हलका-सा दिखता रहता। यह दृश्य प्रमाण बता देता कि गणना में लगभग तीन-चौथाई माह (तकरीबन 33 दिन) का भ्रम उत्पन्न हो गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि युग छोटा रखने से लंबी अवधि की गणनाएँ असंशोधित होती चली जाती थीं।

इस स्थिति पर विचार करने से यह तथ्य सामने आता है कि वेदांग-ज्योतिष में मूल त्रुटि गणना-पद्धति में नहीं थी, बल्कि युग की अवधि को बहुत छोटा चुन लेने में थी। इतने छोटे युग में महीनों और दिनों

की संख्या को पूर्ण संख्याओं में व्यक्त करना संभव तो था, पर शुद्धता के लिए आवश्यक सूक्ष्मता प्राप्त नहीं हो पाती थी। यही कारण है कि बाद के ज्यातिषाचार्यों ने अत्यंत बड़े युगों का चयन किया। उदाहरणत: आर्यभटीय में, जिसकी रचना पाँचवीं शताब्दी ईस्वी के आसपास मानी जाती है, 43,20,000 वर्षों का युग स्वीकार किया गया, जिससे गणनाओं में अद्भुत शुद्धता प्राप्त हो सका।

इस प्रकार पंचवर्षीय युग की पद्धति उस समय के लिए उपयोगी अवश्य थी, परंतु गणितीय सूक्ष्मता और दीर्घकालिक खगोलीय गणनाओं के लिए वह पर्याप्त नहीं थी। यही कारण है कि कालांतर में भारतीय गणित-ज्योतिष के विकास के साथ युग की अवधारणाएँ अत्यधिक विस्तृत रूप धारण करती गईं और उनसे चन्द्रमा, सूर्य तथा ग्रहगण की गतियों का गणितीय ज्ञान अत्यंत परिष्कृत रूप में सामने आया।

भिन्न

ऐसा नहीं समझना चाहिए कि वेदांग ज्योतिष में कहीं भिन्नों का प्रयोग नहीं है। किंतु जहाँ-जहाँ भिन्नों की आवश्यकता पड़ी है, वहीं सबसे छोटे भिन्न को एक विशेष नाम दे दिया गया है। उदाहरणत:, एक नक्षत्र के एक सौ चौबीसवें भाग को 'एक भांरा' कहा गया है। जिसे हम आज *चौबीस भांश* लिखते हैं, उसे वेदांग ज्योतिष में *ग्यारह भांश* कहा गया है।

इसी प्रकार एक दिन को 603 भागों में बाँटकर प्रत्येक को 'एक कला' कहा गया है। फिर एक कला को 124 भागों में बाँटकर प्रत्येक को 'एक काष्ठ' कहा गया है तथा एक काष्ठ को पाँच भागों में बाँटकर, प्रत्येक को 'एक अक्षर' कहा गया है।

यह तो प्रत्यक्ष है कि ये नाम इसलिए नहीं रखे गए थे कि समय की उक्त इकाइयाँ अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं; बल्कि इन इकाइयों की कल्पना केवल इसलिए की गई थी कि ग्रंथकार को दिन के ऐसे भिन्नों की आवश्यकता पड़ गई थी जिनके हर में $603 \times 124 \times 5$ आता है। उस समय भिन्नों का सामान्य प्रचलन कम था और संभवत: इसलिए भी कि छंद रचने में नामयुक्त भिन्नों से सुगमता होती थी। सौभाग्यवश भिन्नों की आवश्यकता बहुत कम पड़ी, अन्यथा नामों का एक विशाल समूह खड़ा हो जाता, जिसे गढ़ना भी कठिन होता और स्मरण रखना भी।

वेदांग ज्योतिष से तात्पर्य

वेदांग ज्योतिष के 43 श्लोकों में से छह श्लोक ऐसे हैं जिनमें गणना का कोई तत्व नहीं है। शेष श्लोकों में अधिकतर या तो परिभाषाएँ दी गई हैं अथवा मूल तथ्य प्रकट किए गए हैं। इन परिभाषाओं में आढक, द्रोण, कुडव, नाडिका, पाद, काष्ठ, कला, मुहूर्त और ऋतुशेष जैसे समय तथा माप की इकाइयों का अर्थ स्पष्ट किया गया है। अन्य श्लोकों में यह बताया गया है कि एक युग में कितने वर्ष, कितने मास और कितने दिन होते हैं, तारों का उदय कितनी बार होता है, और दो अधिमास कब-कब प्रकट होने चाहिए। इतना ही नहीं, युग के प्रारंभ क्षण में सूर्य और चंद्रमा की स्थिति का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उत्तरायण और दक्षिणायन के आरंभ की जानकारी भी इन श्लोकों के माध्यम से मिलती है, जिससे हमें सूर्य की आभासी दक्षिण और उत्तर की ओर गतियों का ज्ञान होता है।

वेदांग ज्योतिष में नक्षत्रों के विषय में भी विवरण मिलता है। तीन श्लोकों में 27 नक्षत्रों के देवताओं के नाम दिए गए हैं। इनका उल्लेख केवल धार्मिक या पौराणिक कारण से नहीं किया गया, बल्कि इसलिए

किया गया कि आगे चलकर नक्षत्रों को सूचक अक्षरों द्वारा पहचानना पड़ा। यदि देवताओं के नाम न बताए जाते तो वह सूचक व्यवस्था समझ में नहीं आती, इसलिए इन श्लोकों का गणितीय महत्त्व भी स्पष्ट हो जाता है। इसी ग्रंथ में एक श्लोक ऐसा भी मिलता है जिसका संबंध फलित ज्योतिष से है, जिसमें यह बताया गया है कि कौन से नक्षत्र अशुभ माने जाते हैं।

एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण श्लोक में वर्ष के सबसे बड़े दिन का मान दिया गया है। इस जानकारी के माध्यम से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वेदांग ज्योतिष का रचयिता किस भौगोलिक अक्षांश के प्रदेश में रहता था। यह पक्ष आगे के विश्लेषण में स्पष्ट किया गया है।

ग्रंथ के शेष सोलह श्लोक गणना के वास्तविक नियम प्रस्तुत करते हैं। इनमें से एक श्लोक तिथि-क्षय का सिद्धांत बताता है। भारतीय चांद्र-पद्धति में तिथियाँ क्रम से नहीं आतीं, क्योंकि चांद्र मास लगभग 29 अर्ध दिनों का होता है जबकि तिथियाँ 30 मानी जाती हैं। इस असमानता के कारण कभी-कभी कोई तिथि छूट जाती है, जिसे तिथि-क्षय कहते हैं। उदाहरण के रूप में, यदि किसी दिन तृतीया हो और अगले दिन चतुर्थी स्थान पर सीधे पंचमी आ जाए, तो यह माना जाता है कि चतुर्थी का क्षय हुआ। यह स्थिति लगभग दो महीनों में एक बार स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है, क्योंकि 59 दिन में 60 तिथियाँ होनी चाहिए और एक तिथि का क्षय अवश्यंभावी है।

वेदांग ज्योतिष में सूर्य और चंद्रमा की स्थिति निर्धारण भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें आठ श्लोक यह बताते हैं कि पूर्णिमा अथवा अमावस्या के समय चंद्रमा अपने नक्षत्र में किस बिंदु पर रहता है। तीन श्लोक सूर्य की नक्षत्र परिस्थिति ज्ञात करने की विधि बताते हैं। इसी प्रकार तीन श्लोक विषुव की गणना की प्रक्रिया बताते हैं, जिससे दिन और रात की बराबरी की स्थिति को ठीक प्रकार समझा जा सके। एक श्लोक योग के विषय में जानकारी देता है, जो सूर्य और चंद्रमा के भोगांशों के योग से निर्धारित होता है। आगे चलकर इसी योग के भेद को आधार बनाकर शुभ-अशुभ फल की व्याख्या फलित ज्योतिष में की जाने लगी।

वेदांग ज्योतिष के अनुसार तिथि-नक्षत्र

वेदांग-ज्योतिष के अनुसार पंचांग की व्यवस्था मूलत: उसी स्वरूप वाली थी, जैसी आज हिंदू समाज में उपयोग की जाती है। मास का निर्धारण चंद्रमा के आधार पर होता था और हर चांद्र मास को वे 30 समान भागों में विभाजित कर देते थे, जिनको तिथि कहा गया। तिथियों का यह विभाजन केवल गणना की सुविधा के लिए नहीं, बल्कि चंद्रमा की वास्तविक घटती-बढ़ती आकृति से मेल बनाए रखने के लिए किया गया था। यदि कभी चंद्र गति तिथियों से सटीक मेल न खाती, तो कोई-कोई तिथि छोड़ दी जाती थी। यह प्रक्रिया अत्यधिक सूक्ष्म वैज्ञानिक सोच का प्रमाण है, जिसे तिथि-क्षय कहा जाता है।

वर्ष में सामान्यत: 12 महीने होते थे, लेकिन चंद्र-वर्ष और सौर-वर्ष में थोड़ा अंतर होने के कारण एक अतिरिक्त मास जोड़ना आवश्यक पड़ता था, ताकि ऋतु-चक्र सही बना रहे। इसी अतिरिक्त महीने को अधिमास कहा गया है। यह व्यवस्था यज्ञ, उत्सव, कृषि, और ऋतु-निर्णय की दृष्टि से अनिवार्य थी, और इसलिए इसे वेदांग-ज्योतिष की वैज्ञानिक दृष्टि का एक सशक्त संकेत माना जाता है।

वेदांग-ज्योतिष में 27 नक्षत्रों का उल्लेख अत्यंत कौशल के साथ किया गया है। उन सभी नक्षत्रों

को एक ही सूत्र में इस प्रकार समाहित किया गया है कि सूत्र पढ़ते ही न केवल नक्षत्र का क्रम ज्ञात होता है, बल्कि यह भी समझा जा सकता है कि सूर्य किस नक्षत्र में स्थित है और उस समय पूर्णिमा अथवा अमावस्या की घड़ी में चंद्रमा उस नक्षत्र के प्रारंभ बिंदु से कितनी दूर है। यह व्यवस्था आश्चर्यजनक वैज्ञानिकता लिए हुए है।

यह सूत्र केवल स्मरण के उद्देश्य से नहीं बनाया गया, बल्कि इसके पीछे उस समय विद्यमान गणितीय कौशल और भाषिक निपुणता दोनों निहित हैं। 27 नक्षत्रों के लिए 27 विशेष संकेताक्षर चुनकर उन्हें क्रम से छंद में बाँध देना— यह कार्य साधारण नहीं था। सूत्र की यह संरचना प्राचीन ऋषियों की वैज्ञानिक प्रतिभा तथा सूक्ष्म चिंतनशक्ति को उजागर करती है।

सूत्र इस प्रकार है—

'जौद्रागः खे श्वे ही रो षा चिन्मूषण्यः सूमा धानः रेमृघास्वापोजः कृष्योहज्येष्ठा इत्युक्षालिगः या।'

वेदांग-ज्योतिष के इस सूत्र का महत्व केवल उसके गणितीय प्रयोग में नहीं, बल्कि इस बात में भी है कि प्राचीन भारत में विषय-ज्ञान कितनी कुशलता से सूत्रबद्ध किया जाता था, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ उसे बिना किसी भ्रम के, स्मरण कर सके और आवश्यकता पड़ने पर गणना में उपयोग भी कर सके। यह सूत्र, वेदांग-ज्योतिष की विद्वत्ता, तर्कशीलता और वैज्ञानिक सौंदर्य— सभी का जीवंत प्रमाण है।

इस श्लोक में नक्षत्र-सूचकाक्षर का जो क्रम दिया गया है, वह केवल संक्षिप्तता की दृष्टि से नहीं बनाया गया, बल्कि उसके पीछे एक अत्यंत सूक्ष्म बुद्धि और व्यावहारिकता छिपी हुई है। यहाँ प्रत्येक संकेताक्षर नक्षत्र के नाम का या तो आरम्भिक ध्वनि-भाग है, या मध्य का कोई अविभाज्य अक्षरांश अथवा अंत में मिलने वाला ध्वनि-चिह्न। ऐसा तब किया गया जब ध्वन्यात्मक रूप से एक अक्षर नक्षत्र की पहचान को निर्विवाद बना देता है। परन्तु जहाँ ऐसा करने पर किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न होने का संकेत था, अथवा जहाँ दो नक्षत्रों के नाम एक ही प्रकार के आरम्भ से आरम्भ होते थे, वहाँ नक्षत्र-देवता का नाम लेकर अक्षर चुना गया। इस व्यवस्था से यह सिद्ध होता है कि नक्षत्रों के नाम मात्र चारित्रिक लक्षण के रूप में नहीं, बल्कि ज्ञान-परम्परा में सूचक-तंत्र के रूप में प्रयुक्त होते थे।

शुरुआत अश्विनी से होती है, जिसे 'ज्यो' के रूप में संकेतित किया गया है। आर्द्रा के लिए 'द्रा' सहज रूप से उसके नाम का ध्वन्यात्मक अंश है। पूर्वा फाल्गुनी के लिए उसके देवता भग का 'गः' चुना गया है, क्योंकि 'फाल्गुनी' कहने पर पूर्वा और उत्तर में भ्रम हो सकता था। इसी प्रकार विशाखा के लिए 'खे' और उत्तराषाढ़ा के लिए उसके देवता विश्वेदेव की ध्वनि 'श्वे' ली गई है। उत्तरा भाद्रपदा में देवता अहिर्बुध्न्य की ध्वनि 'हि' एक स्पष्ट संकेत के रूप में प्रयुक्त हुई। रोहिणी 'रो' से पहचानी जाती है, आश्लेषा 'षा' से, चित्रा 'चित' से और मूल के लिए 'मू' निश्चित सूचक है। शतभिषक का 'षक' और भरणी का 'ण्येः' ध्वन्यात्मक परम्परा का परिचय देते हैं। पुनर्वसू के लिए 'सू' उपयुक्त है, और उत्तर फाल्गुनी में पुनः सम्भावित भ्रम से बचने के लिए उसके देवता अर्यमा का 'मा' लिया गया, जो स्मरण की दृष्टि से भी सुगम है।

आगे अनुराधा 'धा' से, श्रवण 'नः' से और रेवती 'रे' से स्पष्ट होती है। मृगशिरा 'मृ' के द्वारा

संकेतित है; मघा 'घा' के माध्यम से और स्वाती 'स्व' ध्वनि से पहचानी जाती है। पूर्वाषाढ़ा के लिए देवता अप: का 'प:' चुना गया है, ताकि उत्तराषाढ़ा से भ्रम न हो। पूर्वा भाद्रपदा को उसके देवता अजएकपात के 'अज:' से संकेतित किया गया है। कृत्तिका 'कृ' से, पुष्य 'ष्य:' से और हस्त केवल 'ह' से ही पर्याप्त रूप से इंगित हो जाता है। ज्येष्ठा 'ज्ये' से और श्रविष्ठा 'ष्ठा' से पहचानी जाती है, जिसका प्रयोग अन्य किसी नक्षत्र से भ्रम उत्पन्न नहीं करता।

यह स्पष्ट है कि प्राचीन गणित-परम्परा में नक्षत्रों की गणना और खगोलीय मान निर्धारण के लिए इन संक्षिप्त संकेतों का प्रयोग अनिवार्य हो जाता था। सूत्र-साहित्य में संक्षेप को सर्वोच्च महत्त्व दिया जाता था; अत: दीर्घ-नाम लिखना व्यावहारिक नहीं था, और फिर छन्द-योजना के अनुसार ध्वन्यात्मक संतुलन भी आवश्यक था। इस प्रकार नक्षत्र-देवताओं के नामों का सहारा लेना केवल धार्मिक या सांस्कृतिक परम्परा नहीं, बल्कि गणना की शुद्धता और संकेत-व्यवस्था की स्पष्टता के लिए एक अद्‌भुत वैज्ञानिक उपाय था।

वेदांग-ज्योतिष का काल

वेदांग-ज्योतिष में विषुव, अर्थात दिन और रात के बराबर होने की स्थिति, और उसके समय सूर्य की तारों के सापेक्ष स्थिति का वर्णन मिलता है। यह स्थिति स्थिर नहीं रहती, बल्कि धीरे-धीरे बदलती है, जिसे 'अयन' कहते हैं। इस खगोलीय संकेत के आधार पर ग्रंथ का काल लगभग 1200 ईसा पूर्व माना जाता है।

हालाँकि यूरोपीय विद्वानों का मत है कि सूर्य की स्थिति का वेध करना कठिन था और ग्रंथकार ने संभवत: पुरानी परंपरा या सुनने-सुनाई जानकारी के आधार पर इसे लिखा। इसलिए कुछ त्रुटि की संभावना भी मानी जा सकती है। बावजूद इसके, अन्य प्रमाणों की अनुपस्थिति में 1200 ईसा पूर्व का काल मानना उचित है। यह काल भारत में प्राचीन खगोल-ज्ञान की प्रगाढ़ता और गणनात्मक क्षमता को दर्शाता है।

वेदांग-ज्योतिष का लेखक

वेदांग-ज्योतिष में स्पष्ट है कि ग्रंथकार ने ज्योतिष का ज्ञान महात्मा लगध से प्राप्त किया। ऋग्वेद ज्योतिष के दूसरे श्लोक और यजुर्वेद ज्योतिष के 43वें श्लोक में इसका उल्लेख मिलता है। लेखक का नाम 'शुचि' माना जाता है, लेकिन इसका अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि लेखक स्वयं शुद्ध होकर ज्ञान प्रस्तुत कर रहा है। लगध का नाम संस्कृत साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता, और यह संभव है कि वे कोई विदेशी विद्वान थे।

ग्रंथ में बड़े दिन की लंबाई का उल्लेख भी है, जिससे लेखक का अक्षांश लगभग 35ए अनुमानित होता है, जो उत्तर कश्मीर या अफगानिस्तान के क्षेत्र के अनुरूप है। प्राचीन लोग सरल उपायों से दिनमान मापकर इसे निश्चित कर सकते थे, इसलिए इस आधार पर अक्षांश का अनुमान भरोसेमंद माना जा सकता है।

केवल मध्यक गतियाँ

वेदांग-ज्योतिष में ग्रहों की चाल को 'मध्यक' अथवा समान वेग का माना गया है, अर्थात् सूर्य और चंद्र को ऐसे ग्रहित किया गया है मानो दोनों समान कोणीय गति से आकाश में चलते हों। वास्तव में दोनों की गति अलग होती है—कभी तीव्र, कभी मंद—लेकिन ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं मिलता। इसी कारण

वहाँ सभी तिथियों को बराबर अवधि वाली समझा गया है।

बाद के ज्योतिष-ग्रंथों, जैसे सूर्य-सिद्धांत आदि में, इस यथार्थ को स्वीकार किया गया कि चंद्र और सूर्य असमान गति से चलते हैं, और तिथियाँ छोटी-बड़ी हो सकती हैं। वहाँ इस असमानता के आधार पर गणना के नियम भी स्पष्ट दिए गए हैं।

यह संभव है कि वेदांग-ज्योतिष के ग्रंथकार को इस तथ्य का ज्ञान न रहा हो, अथवा गणना को सरल बनाने के लिए समान गति मान ली हो—हालाँकि इसकी संभावना कम प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त, 'अयन' अर्थात् विषुव बिंदु के धीरे-धीरे खिसकने का ज्ञान वेदांग-ज्योतिष में नहीं है, और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि उस अत्यंत प्राचीन काल में इस सूक्ष्म गति को पहचानना कठिन था।

वैध (वेध) और गणना में अंतर

वेदांग-ज्योतिष की एक प्रमुख विसंगति यह थी कि उसमें 'वेध' यानी प्रत्यक्ष निरीक्षण और *गणना* यानी नियमों से निकाले परिणाम के बीच अंतर होने पर क्या करना चाहिए, इसका कोई स्पष्ट निर्देश नहीं मिलता। चूँकि वेदांग-ज्योतिष में युग छोटा माना गया था और वेध भी अत्यन्त सूक्ष्म नहीं होते थे, इसलिए कुछ वर्षों में गणनात्मक निकाल और वास्तविक स्थिति में इतना अंतर आ जाता था कि उसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था। ऐसी स्थिति में किसी विधि का अपेक्षित होना स्वाभाविक था, पर वह बताई नहीं गई।

यह अनुमान ही लगाया जा सकता है कि व्यावहारिक रूप से क्या किया जाता रहा होगा। एक मत के अनुसार, अवश्य कुछ नियम रहे होंगे—जो कालान्तर में लुप्त हो गए, जैसा लाला छोटे लाल का विचार है। दूसरी धारणा यह है कि कोई निश्चित नियम न थे, बल्कि समय-समय पर आवश्यक संशोधन करके गणना को वास्तविक अवलोकन के अनुरूप बना दिया जाता था, जैसा कि डॉ. श्याम-शास्त्री का मत है।

एक श्लोक से कुछ संकेत मिलता है कि आवश्यकता पड़ने पर घटाना या बढ़ाना उचित माना गया होगा, पर यह अर्थ सर्वमान्य नहीं है। निश्चय के साथ कुछ कहा नहीं जा सकता। लगता यही है कि यह गणना 'स्थूल थी, और पूजा-पर्व के निश्चितीकरण करने वाले लोग परिस्थितियों को देखकर गणना में सुधार कर लेते थे, पर वे अधिक वैज्ञानिक, विस्तृत नियम नहीं बना पाए।

वर्तमान में भी एक समस्या यह रही कि वेदांग-ज्योतिष में वर्ष की लंबाई 366 दिन मानी गई, जबकि वास्तविक मान लगभग 365 दिनों का है। कुछ वर्षों के बाद यह अंतर ऋतु और पंचांग में भारी भेद उत्पन्न कर देता। यदि 100 वर्षों तक 366 दिन मान लिए जाएँ, तो ऋतु-स्थिति और गणना में लगभग 75 दिन का अंतर आ जाएगा। अर्थात् बरसात की ऋतु का आगमन गणना के अनुसार वैशाख या जेठ में दिखेगा। इससे स्पष्ट है कि या तो अन्य सुधारात्मक नियम अस्तित्व में रहे थे—या वे बाद के समय में बने—लेकिन दुर्भाग्यवश आज वे उपलब्ध नहीं हैं।

गंभीर खेद का विषय यह है कि 1200 ई. पू. के वेदांग-ज्योतिष और लगभग 500 ई. के आर्यभटीय जैसे ग्रंथों के बीच का काल पूरी तरह वैज्ञानिक इतिहास के लिए अज्ञात है। इस दीर्घ अंतराल में ज्योतिष-विज्ञान में क्या उन्नति हुई, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता। बाद के ग्रंथों का विवरण आगे के अध्यायों में आता है।

निष्कर्षत: वेदांग–ज्योतिष भारतीय ज्योतिष की प्राचीन आधारभूमि है, जिसमें तिथि–मास–नक्षत्र की पद्धति दी गई है, पर गणना स्थूल है और वर्ष–मान वास्तविक से भिन्न होने से अंतर पड़ता रहा। ग्रंथकार का ज्ञान महात्मा लगध से मिलता है, पर लेखकत्व निश्चित नहीं। इसका काल लगभग 1200 ई.पू. माना जाता है। यद्यपि इसमें अनेक त्रुटियाँ हैं, फिर भी बाद के सूर्य-सिद्धांत जैसे ग्रंथों का मूल यही रहा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *पं. बालकृष्ण द्विवेदी, भारतीय ज्योतिष का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1974*
2. *भावरलाल सुनेरी, प्राचीन भारतीय ज्योतिष, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1982*
3. *देवेंद्र अवस्थी, वेदांग ज्योतिष का वैज्ञानिक अध्ययन, प्रयाग, 1978*
4. *डॉ. वी. एस. अग्रवाल, भारतीय काल-गणना, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1966*
5. *डॉ. सुरेशचंद्र जोशी, वैदिक ज्योतिष: स्वरूप और विकास, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 1991*
6. *डॉ. अनंतकृष्ण शास्त्री (सम्पादक), वेदांग ज्योतिष: हिन्दी व्याख्या सहित, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1965.*
7. *डॉ. श्याम शास्त्री, भारतीय ज्योतिष की प्राचीन परंपरा, प्रयाग, 1952.*
8. *लाला छोटे लाल, ज्योतिष तत्व विमर्श, इलाहाबाद, 1928*
9. *पं. श्रीधर शर्मा, सूर्य सिद्धांत का परिचय, चौखम्भा ओरिएंटल, वाराणसी, 1985*
10. *Thibaut, G., The Vedanga Jyotisa of the Rigveda and the Yajurveda, Fifth Edition, Banaras Hindu University Press, Varanasi, 1899.*
11. *Burgess, E. W., Surya Siddhanta: A Text-book of Hindu Astronomy, Motilal Banarsidass Publishers, Delhi, 1989.*
12. *Shukla, K. S., History of Hindu Mathematics, Part–I, The Indian Press, Prayagraj (Allahabad), 1940.*
13. *Tilak, Bal Gangadhar, The Orion; or, Researches into the Antiquity of the Vedas, Poets and Hoot Press, Pune, 1893.*
14. *Sadananda, Bhasvati (Astronomical Notes), Chowkhamba Vidya Bhavan, Varanasi, 1965.*
15. *Dikshit, B. V., History of Indian Astronomy, The Indian Press, Prayagraj (Allahabad), 1920*
16. *Kothari, D. S., Ancient Indian Astronomy, National Book Trust, New Delhi, 1971.*